International Journal of Information Movement Vol.2 Issue IX January 2018)

Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 141-143

निराला के गद्य साहित्य में दलित चेतना

कीर्ति कुमारी
यू.जी.सी.नेट/जे.आर.एफ
ति.माँ. भागलपुर वि.वि., भागलपुर
ईमेल : 24kirtisinghnetjrf@gmail.com

'दलित' शब्द संस्कृत के 'दल्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है–दलना अर्थात् अलग–अलग करना। इसे चूर–चूर करना या टुकड़े–टुकड़े करना भी कह सकते हैं। [1]

'दलित' शब्द आधुनिक है, लेकिन, भारतीय समाज में दलित व्यवस्था काफी प्राचीन है। 1933 में भारतवर्ष में ब्रिटिश सरकार ने जातीय आधार पर समाज के पिछडे तवकों को 'डिप्रेस क्लासेस' नाम दिया, जिसका अर्थ है–पद–दलित। वास्तव में पद–दलित का पर्यायवाची शब्द ही दलित शब्द के रूप में प्रयुक्त होने लगा। प्राचीन साहित्य में इसके लिए शूद्र, अति शूद्र, चांडाल, अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया। यह सच है कि विभिन्न काल–खण्डों में डिप्रेस क्लासेस, अस्पृश्य, हरिजन, शूद्र, दलित आदि शब्दों का प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में किया गया है; जैसे–

सामाजिक दृष्टि से दलित
आर्थिक दृष्टि से दलित
धार्मिक–सांस्कृतिक दृष्टि से दलित

तथा लिंगीय दृष्टि से भी दलित शब्द की व्याख्या की गयी है। समाज के आधे हिस्से 'स्त्रियाँ, जिसे सिमोन द बुआ 'सेकेण्ड सेक्स' कहतीं हैं, अपने–आप में एक तरह से दलित ही है।

भारत की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व्यवस्था की संरचना में उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित और अधिकारों से वंचित वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला दलित शब्द सामाजिक परिवर्तन की अकांक्षा का पर्यायवाची बन चुका है। समकालीन हिन्दी आन्दोलन में दलित शब्द नवीन अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में–''दलित शब्द हमारे लिए एक बहुत ही प्रेरणादायक शब्द है। हम इसे दल के साथ जोड़ते हैं, जो सामूहिक तौर पर कार्य करता है, जीवन को सामाजिक तरीके से जीता है और समाज से अलगाव दूर करता है। इसी के आधार पर हमने दलित शब्द को स्वीकार किया है। दलित एक आन्दोलन का भी प्रतीक है हमारे लिए और ऐसा पहली बार हुआ है इतिहास में कि दलितों ने अपने लिए एक अपना शब्द चुना है। अभी तक वे अपने लिए दूसरे के दिए शब्दों को स्वीकार करते रहे हैं। यहाँ, तक कि उनके बच्चे के नाम भी दूसरे रखते थे। अपने नाम रखने के लिए भी वे स्वतंत्र नहीं थे। लेकिन यह पहली बार हुआ है कि उन्होंने अपने लिए एक शब्द चुना है, जो उनके लिए एक संघर्ष का प्रतीक है।''2

दलित चेतना की निर्मिति का प्राथमिक बिन्दु है आत्मसम्मान, गरिमा और मौलिक अधिकारों की प्राप्ति, जो ज्योतिबा फुले और डॉ0 वी.आर. अम्बेडकर के विचार एवं दर्शन पर आधरित है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध दलित कवि एवं आलोचक ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित चेतना को स्पष्ट करते हैं–''दलित चेतना का सीधा सरोकार मैं कौन हूँ,? से बहुत गहरे तक जुड़ा हुआ है। चेतना का संबंध दृष्टि से होता है, जो दलित को सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ती है। अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर नकार दिया जाना यानि दलित होना और उनकी चेतना यानि 'दलित चेतना', जो दलित आन्दोलन के एक लंबे इतिहास की देन है, अलग–अलग काल–खण्डों में एक अलग रुपों में दिखाई पड़ती है।''3

दलित साहित्य से तात्पर्य दलित जीवन और उनकी समस्याओं पर लेखन को केन्द्र में रखकर हुए साहित्यिक आन्दोलन से है, जिसका सूत्रपात 'दलित पैंथर' से माना जा सकता है। हलाँकि साहित्य में दलित वर्ग की उपस्थिति बौद्ध काल से मुखरित रही है, किन्तु एक लक्षित मानवाधिकार आन्दोलन के रुप में दलित साहित्य मुख्यतः बींसवीं सदी की देन है। दलित साहित्य की अवधारणा को लेकर लंबी बहसें चलीं, कि दलित साहित्य कौन लिख सकता है, यानि स्वानुभूति ही प्रमाणिक होगी या सहानुभूति को भी स्थान मिलेगा। ''यह प्रश्न मराठी की तुलना में हिन्दी साहित्य में अधिक उठा, अंत में इस बात पर राय बनी कि दलित साहित्य नब्बे के दशक में उभरा एक साहित्यिक आन्दोलन है, जिसमें प्रमुखता से दलित समाज में पैदा हुए रचनाकारों ने हिस्सा लिया और इसे अलग धारा मनवाने के लिए संघर्ष किया।''4

दलित साहित्य की शुरुआत 'मराठी भाषा' से मानी जाती है, किन्तु बींसवीं सदी के अंत तक एक क्षीण और अदृश्य धारा के रुप में दलित चेतना युक्त साहित्य हिन्दी की एक विस्तृत और क्रांतिकारी शाखा बन गया। जिसमें कविता, कहानी, आत्मकथा, संस्मरण, नाटक आलोचना आदि सभी विधाएँ, शामिल थीं। हिन्दी में सबसे पहले संत कबीर और लोकनायक तुलसीदास ने दलित वर्ग की करुणा एवं चेतना को साहित्यिक रुप प्रदान किया। आधुनिक काल में हिन्दी गद्य साहित्य में दलित वर्ग का हृदय विदारक वर्णन करने वाले लेखकों में मूर्धन्य साहित्यकार हैं–प्रेमचंद। काव्य के क्षेत्र में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने भी उक्त कार्य को बढ़ावा दिया। छायावादी कवियों ने भी दलित चेतना को लिपिबद्ध करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आगे चलकर प्रगतिवादी कवियों ने मार्क्सवाद से प्रेरित होकर दलित वर्ग की

पीड़ा को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया। दलितों के प्रति प्रगतिवादी काव्य में जो सहानुभूति व्यक्त की गयी, उसमें सहृदयों के मन को प्रभवित किया।''5 इसतरह, हम देखते हैं कि लंबे समय से दलित साहित्य की एक सुदीर्घ परंपरा चली आ रही है।

यद्यपि, दलितों के द्वारा दलितों के हक में लिखे गए या लिखे जाने वाले साहित्य को दलित साहित्य माना गया, तथापि दलितेत्तर साहित्यकारों द्वारा लिखित दलित साहित्य को नकारा नहीं जा सकता। वैसे तो सभी छायावादी साहित्यकारों की रचनाओं में हमें दलित चेतना देखने को मिलती है, किन्तु अपेक्षाकृत निराला सर्वाधिक मुखर और प्रबल पक्षधर सिद्ध हुए। उन्होंने अपने उपन्यास 'कुल्लीभाट' और कहानी 'चतुरी चमार' तथा अन्य निबंधों एवं टिप्पणियों में दलित चेतना के उभार में अपनी दमदार भूमिका का निर्वाह किया है।

निराला की कुल दस उपन्यासें हैं, जिनमें से दो अपूर्ण हैं। जहाँ, तक दलित चेतना की बात है, इस दृष्टि से उनका एकमात्र उपन्यास 'कुल्लीभाट' उल्लेखनीय है। ऐसे छिट–पुट रुप में उनके अन्य उपन्यास–बिल्लेसुर बकरिहा, काले कारनामे और निरुपमा में भी इसे देखा जा सकता है। कुल्लीभाट का नायक 'पथवारीदीन भट्ट' उर्फ कुल्लीभाट जन्म से कुलीन होते हुए भी न सिर्फ मुसलमान औरत से ब्याह करता है, बल्कि अछूतों के जीवन–स्तर में सुधार लाने के उद्देश्य से पाठशाला खोलता है और इसके साथ ही अछूत परिवारों के बीमार और लाचार सदस्यों की निःस्वार्थ सेवा भी करता है।

कुल्लीभट में यह प्रसंग है कि निराला जब अछूत बच्चे से मिलते हैं तो वे बच्चे निराला को स्पर्श नहीं करते, बल्कि दूर से ही फूलों से उनका स्वागत करते हैं। तब कवि का विद्रोही मन बिफर उठता है–''ये पुश्त–दर–पुश्त सम्मान देकर नतमस्तक ही संसार से चले गए हैं। संसार की सभ्यता के इतिहास में इसका स्थान नहीं है। ये नहीं कह सकते, हमारे पूर्वज कश्यप, भारद्वाज, कपिल, कणाद थे। रामायण, महाभारत इनकी कृतियाँ, हैं। अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं। अशोक, विक्रमादित्य, हर्षवर्धन, पृथ्वीराज इनके वंश के हैं, फिर भी ये थे और हैं।''6 निराला ने उन बच्चों से संयत होकर कहा–''आपलोग अपना दोना मेरे हाथ में दीजिए और मुझे इसी तरह भेंटिए जैसे मेरे भाई भेंटते हैं।''7

निराला के इन बातों में हमें दलित चेतना के स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं। उनके अधूरे उपन्यास 'चमेली' में चमेली के माध्यम से निराला ने दलित चेतना को स्पष्ट किया। ठाकुर बख्तावर सिंह जब चमेली के साथ जबरदस्ती करने का प्रयास करता है, तो चमेली उसका कड़ा प्रतिकार करती है। ठाकुर द्वारा झूठे बदनाम किये जाने पर पिता जब उसे फटकारते हैं कि तूने मेरी नाक कटवा दी। इस पर वह कहती है–''अँधेरे में तुझे अपनी नाक न दिख पड़े तो मेरा क्या कसूर है।''8

उपन्यासकार ने सामंती सामाजिक व्यवस्था में दलितों की दुःखद स्थिति का दस्तावेज प्रस्तुत करते हुए यह दिखाना चाहा है कि दलित यानि शूद्र अब अत्याचार को सहन करने के मूड में नहीं है।

निराला की कहानी 'चतुरी चमार'(1934) भी दलित चेतना कसे मुखर करने में अपनी भूमिका निभाती है। 'चतुरी' के बहाने निराला ने दलित समस्या पर विचार किया है और चतुरी जैसे समझदार और विचारवान व्यक्ति को, चाहे वह किसी भी वर्ग में हो इज्जत बख्शी है। निराला कहते हैं–''गौर वे बहुवचनम् लिखूँ, । पर एक अड़चन है, गाँव के रिश्ते में चतुरी मेरा भतीजा लगता है।''9

निराला के निबंधों में भी दलित चेतना व्यक्त हुई है। ऐसे निबंधों और टिप्पणियों की संख्या एक दर्जन से ज्यादा है। ये निराला रचनावली के छठे खण्ड में है, यथा–वर्णाश्रम–धर्म की वर्तमान स्थिति(1930), भारत का नवीन प्रगति में सामाजिक लक्ष्य(1930), सामाजिक पराधीनता(1932), हमारे समाज का भविष्य रुप(1931), महात्मा जी की भीषण प्रतिज्ञा(1932), हिन्दुओं का जातीय संगठन(1932), राजनीति और समाज(1933), राजनीति के लिए सामाजिक योग्यता(1933), महात्माजी और हरिजन(1933), सनातन धर्म और अछूत(1933), अधिकार समस्या(1933)।

वर्णाश्रम–धर्म की वर्तमान स्थिति में निराला ने भारतीय समाज में प्रचलित वर्णाश्रम–धर्म पर विचार करते हुए जाति–पाँति तोड़क मंडल के मंत्री संताराम जी के रवैये की आलोचना की है। निराला को इस बात से चिढ़ है कि कुछ लोगों ने इसे अपनी राजनीति का आलंबन बना रखा है। जिसकी अभिव्यक्ति वे इन शब्दों के माध्यम से करते हैं–''शूदों के प्रति केवल सहानुभूति प्रदर्शन कर देने से ब्रह्मन धर्म की कर्त्तव्यपरता समाप्त नहीं हो जाती, न जाति–पाँति तोड़क मंडल के मंत्री संताराम जी के करार देने से, इधर दो हजार वर्षों के अंदर संसार भर का सर्वश्रेष्ठ विद्वान महामेधावी त्यागीश्वर शंकर शूद्रों के यथार्थ शत्रु सिद्ध हो सकते हैं।''10

वर्तमान हिन्दू समाज में निराला ने कहा कि–''शूद्र शक्तियों से यथार्थ भारतीयता की किरणें फूटेंगी।''11 अक्टूबर 1932 में हिन्दी मासिक पत्रिका 'सुधा' में 'महात्माजी की भीषण प्रतिज्ञा' नाम से एक टिप्पणी लिखी। इसमें उन्होंने बापू के अनशन पर प्रकाश डाला था। अवर्णों के प्रति सवर्णों का दुराव व उत्पीड़न के विरोध में उन्होंने प्राण त्यागने की धमकी दी थी। गाँधीजी के अनशन से अछूतों के लिए कानपुर में मंदिर खुल गए और कलकत्ते में अछूत काली का दर्शन करने लगे। ''बम्बई में अछूतों को एक पंक्ति में बैठाकर ऊँचे खानदान की ब्रह्मण महिलाएँ तक भेजन कर रही हैं। बिहार के तेरह लाख अछूत महात्माजी के साथ हैं।''12

'हमारे समाज का भविष्य रुप' में निराला ने वर्तमान हिन्दू समाज को बासी और रुग्न बताया। इसके लिए उन्होंने एक रुपक चुना। उन्हीं के शब्दों में–''हमारा समाज विगत रात्रि की एक सभ्य सुन्दरी युवती के गले की माला है,

जो उनकी नैश के दियों से अच्छी तरह मसल गयी है–वर्तमान प्रगति के लिए, अनुपयोगी, तमाम दल मले हुए, निर्गन्ध।''13 यह रुपक उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था के संदर्भ में गढ़ा है। यथार्थ यह है कि वर्णाश्रम व्यवस्था अब छिन्न–भिन्न हो गई है। वर्तमान परिवेश में इसका कोई औचित्य नहीं रह गया। अतएव समाज में आमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

'मनुष्य गणना और जात–पात' में निराला ने जाति–पाति तोड़क मंडल की आलोचना की है। उसने एक अपील जारी की, जिसमें लिखा है कि जनगणना के जाति वाले कॉलम में किसी जाति या उपजाति का वर्णन नहीं करना है। निराला का कहना है कि सिर्फ कागज पर 'नो–कास्ट' लिख देने से जाति उन्मूलन नहीं हो सकता। जब तक चारो वर्णों के अनगिनत उपभेद खत्म नहीं होते, वर्ण–व्यवस्था का शुद्ध रुप नहीं बच जाता, तब तक कुछ नहीं होने को है।

निराला ने अपने दलित संबंधी विचार अन्य टिप्पणियों में व्यक्त किया है : हिन्दुओं का जातीय संगठन(1932), राजनीति के लिए सामाजिक योग्यता(1933), महात्माजी और हरिजन(1933), सनातन धर्म और अछूत(1933), अधिकार समस्या(1933), सनातन धर्म और अछूत (1933) इत्यादि।

'राजनीति के लिए सामाजिक योग्यता' में वे लिखते हैं–''तोड़कर फेंक दीजिए जनेऊ जिसकी आज कोई उपयोगिता नहीं जो बड़प्पन का भाव पैदा करता है और समस्वर से कहिए कि आप उतनी ही मर्यादा रखते हैं, जितनी आपका नींच से नींच पड़ोसी चमार या भंगी रखता है। तभी आप महामनुष्य हैं।''14

इसी तरह, दलितों के उत्थान की बात उन्होंने 1933 के 'सुधा' में 16 अगस्त को एक टिप्पणी में लिखा था। देखिए–''यदि हम चाहते हैं कि महात्माजी जीवित रहें, हमारे लिए, हमारे देश के लिए, तो हमें हरिजनों को गले लगाना होगा। उन्हें अपनाना होगा, ऊँच–नींच का भेद सर्वथा मिटाना होगा। यदि हम अब भी अपने ही ऐसे हाड़–चाम वाले मनुष्य को अछूत समझेंगे, उन्हें दुरदुरायेंगे तो वह समय दूर नहीं जब संसार की सारी शक्तियाँ हमसे रूठ जायेंगी तथा हमारा ऐसा पतन होगा कि हम उठाए नहीं उठेंगे। संसार हमारी आस्था पर हँसेंगे। हमारी मूर्खता पर हमारा उपहास करेगा।''15

कुल मिलाकर देखते हैं तो पता चलता है कि निराला दलितों के सर्वांगिन विकास के प्रबल पक्षधर थे। वे शैक्षिक, आर्थिक उन्नति के माध्यम से सामाजिक विकास व प्रतिष्ठा के समर्थक थे। दलित के प्रति सहानुभूति दिखाना एक बात है और उनके पूर्ण विकास के लिए सोचना और करना दूसरी बात है। निराला दूसरे कोटि के व्यक्ति हैं। दलितों पर लिखित उनकी निबंध रचनाएँ उक्त बातों के प्रमाण हैं।

संदर्भ- सूची

1. वामण शिवराम आप्टे; संस्कृति–हिन्दी कोश, पृ0–450
2. आजकल; मासिक पत्रिका, अंक–मई(2008),पृ0–37
3. ओम प्रकाश वाल्मीकि; मुख्यधारा और दलित साहित्य, पृ0–50
4. वीर भारत तलवार; दलित साहित्य की अवधारण, पृ0–75
5. ताराचन्द्र खण्डेकर; दलित साहितय की वैचारिक, पृ0–80
6. कुल्लीभाट; निराला रचनावली, भाग–4,पृ0–63
7. वही; पृ0–62
8. चमेली; निराला रचनावली, भाग–4, पृ0–254
9. चतुरी चमार; निराला रचनावली, भाग–4, पृ0–369
10. निराला रचनावली, भाग–6, पृ0–109
11. वही; पृ0–117
12. वही; पृ0–378
13. वही; पृ0–362
14. वही; पृ0–437
15. वही; पृ0–419